अलङ्कार (साहित्य दर्पण के अनुसार)

मानव स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रिय है। उसकी यह सौन्दर्यप्रीयता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिबिम्बित होती है। वह सर्वदा जीवन को सौन्दर्य से भर देना चाहता है। मानव की यही प्रवृत्ति काव्य में अलङ्कार विधान में परिलक्षित होती है। कतिपय आचार्यों ने सौन्दर्य को ही काव्य माना है। यदि यह मत मान लिया जाये तो जिस प्रकार सुन्दरी अपने सौन्दर्य में वृद्धि करने के लिए आभूषणों तथा मनोरम वस्त्रों को धारण करती है उसी प्रकार कविगण भी कविता-कामिनी को वाणी विभूषणों से अलङ्कृत कर काव्य में रमणीयता लाने का प्रयत्न करते हैं।

अलङ्कारों का स्वरूप—संस्कृत साहित्य में अलङ्कारों का बहुत महत्त्व है। भारतीय काव्यशास्त्र में इन वाणी विभूषणों का बहुत मान किया जाता है। कविवर राजशेखर ने इनको वेद का सातवाँ अङ्ग माना है। अलङ्कार वेदार्थ में उपकारक है क्योंकि इनके बिना वेदार्थ की अवगति नहीं हो सकती है।

"उपकारकत्वात् अलङ्कारः सप्तङ्गमितियायावरीयः।
ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थनवगतिः॥" **काव्यमीमांसा**

भारतीय साहित्याचार्यों ने अलङ्कारों के स्वरूप तथा कविता में उनके महत्त्व का बहुत विवेचन किया है उदाहरणार्थ कतिपय अचार्यों के अलङ्कार विषयक मान्यताओं को उदधृत किया गया है—

अग्निपुराण में वेदव्यास जी कहते हैं—

"अलङ्काररहिता वैधवैव सरस्वती" **अग्निपुराण 343/12**

अर्थात् "अलङ्काररहित सरस्वती विधवा के समान है।"

भामह के अनुसार—

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।" **काव्यालङ्कार 1/13**

अर्थात्, "सुन्दर होते हुए भी आभूषण के बिना नारी के मुख पर कान्ति नहीं आती है।"

दण्डी के अनुसार—

"काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते।" **काव्यादर्श 2/2**

अर्थात्, "काव्य शोभा के सम्पादक धर्मों को अलङ्कार कहते हैं।"

वामन के अनुसार—

"काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् सौन्दर्यमलङ्कारः॥" **काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 1.1/2**

"काव्य में सौन्दर्य ही अलङ्कार है।"

उद्भट के अनुसार—

"चारूत्वहेतुत्वेऽपि गुणानामलङ्कारता॥" **अलङ्कार सारसंग्रह**

"गुण और अलङ्कार चारूत्व के हेतु है।"

रूद्रट के अनुसार—

"काव्यमलङ्कर्तुरूदारा मतिर्भवति।"

"कवि की उदार मति सालङ्कार काव्यों की रचनाओं में सफल होती है।"

क्षेमेन्द्र के अनुसार—

"उचितस्थान विन्यासादलङ्कृतिलङ्कृतिः।" **औचित्य विचारचर्चा 1/6**

"उचित स्थान पर धारण करके ही अलङ्कार शोभाकारक है।"

आनन्दवर्धन के अनुसार–

"रसाक्षिप्ततया यस्य बन्ध शक्यः क्रियो भवेत्।"
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः॥ ध्वन्यालोक 2/16

"ध्वनि में जिस अलङ्कार की रचना रस से आक्षिप्त रूप में बिना किसी अन्य प्रयत्न के हो सके, वही अलङ्कार मान्य है।"

मम्मट के अनुसार–

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं ये अङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥ काव्यप्रकाश 8/7

"अलङ्कार हारादि आभूषणों के समान है वे कदाचित रस का उपकार कर सकते हैं, सर्वदा नहीं। जहाँ रस नहीं वहाँ भी अलङ्कार रह सकता है।"

विश्वनाथ के अनुसार–

"शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकवन्तीऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥" साहित्यदर्पण 10/1

"अङ्गादादि के समान शोभा के अतिशयिता और रसादि के उपकारक शब्दार्थ के अस्थिर धर्म को अलङ्कार कहते हैं।"

आचार्यों की उपर्युक्त की अलङ्कार-विषयक मान्यताओं के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अलङ्कार केवल वाणी के शृङ्गार के लिए नहीं, अपितु वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। वैसे भी काव्य में अलङ्कार नितान्त बाह्य आभूषण नहीं हैं कि जिन्हें जब चाहें पहन लें जब चाहें उतार दें। वे काव्य के कवच-कुण्डलों के सदृश हैं और शक्ति के द्योतक हैं। हाँ, रस को अलङ्कार के अन्तर्गत रखना सर्वथा अनुचित है। अलङ्कार कृत्रिम भी हो सकते हैं किन्तु महत्त्व उन अलङ्कारों का है जो कवि-गत उत्साह से प्रेरित हों।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में अनेक अलङ्कारों का विशद विवेचन किया है। यहाँ हम निम्न अलङ्कारों का अध्ययन करेंगे–

1. अनुप्रास	2. यमक	3. उपमा	4. रूपक
5. उत्प्रेक्षा	6. सन्देह	7. भ्रान्तिमान	8. दृष्टान्त
9. निदर्शना	10. विभावना	11. विशेषोक्ति	12. अर्थान्तरन्यास
13. समासोक्ति			

शब्दालंकार

1. अनुप्रास

अनुप्रास का लक्षण–"अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।"

"स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद, पदांश के साम्य (सादृश्य) को अनुप्रास कहते हैं।" स्वरों की समानता हो, चाहे न हो परन्तु अनेक व्यञ्जन जहाँ एक से मिल जायँ वहाँ अनुप्रास अलङ्कार होता है।

अनुप्रास के पाँच भेद

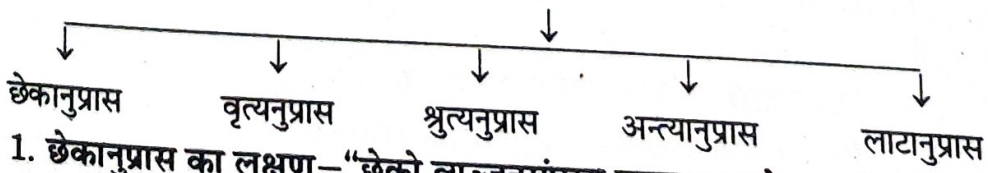

1. छेकानुप्रास का लक्षण–"छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।"

व्यञ्जनों के समुदाय की एक ही बार अनेक प्रकार की समानता होने को छेकानुप्रास कहते हैं। यहाँ अनेक प्रकार की समानता से यह तात्पर्य है कि स्वरूप से भी समानता होनी चाहिए और क्रम से भी। एक ही स्वरूप के व्यञ्जन यदि उसी क्रम से दूसरी बार आयें तो छेकानुप्रास होगा।

छेकानुप्रास का उदाहरण–

"आदाय बकुलगन्धानन्धीकुर्वन्पदे पदे भ्रमरान्
अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारि पावनः पवनः॥"

अर्थ–कावेरी के जल कणों से युक्त पवित्र करने वाला पवन, मौलसिरी के गन्ध को लेकर, पद पद भ्रमरों के मदान्ध करता हुआ प्रवाहित हो रहा है।

स्पष्टीकरण–इस पद्य में 'गन्धानन्धी' यहाँ पर संयुक्त 'न' और 'ध' की उसी क्रम से एक ही बार आवृत्ति हुई है अतः यह छेकानुप्रास का उदाहरण है। इसी प्रकार 'कावेरीवारि' यहाँ असंयुक्त 'व' और 'र' की तथा पावन पवनः में प-व-न की एक ही बार आवृत्ति हुई है अतः यहाँ छेकानुप्रास है। छेक का अर्थ है चतुर पुरुष। उनके प्रयोग के योग्य होने के कारण इसे छेकानुप्रास कहते हैं।

2. वृत्त्यानुप्रास का लक्षण–

"अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा।
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते॥4॥"

अनेक व्यञ्जनों की स्वरूप से एक बार आवृत्ति होने पर अथवा अनेक व्यञ्जनों की अनेक बार स्वरूप तथा कम दोनों से आवृत्ति होने पर अथवा एक ही वर्ण की एक बार आवृत्ति होने पर अथवा एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने पर वृत्यनुप्रास अलङ्कार होता है।

वृत्त्यानुप्रास का उदाहरण–

"उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर,
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरूद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण,
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः॥"

अर्थ–उदित होते हुए मधु के गन्ध में लुब्ध भ्रमरों से कम्पित आमों की नवीन मञ्जरी पर क्रीड़ा करते हुए कोकिलों के मधुर-मधुर सुरीले कलकूजितों से जिनके कानों में व्यथा उत्पन्न हो रही है, वे विरही पथिक इन वसन्त ऋतु के दिनों को, ध्यान में चित्त के अवधान अर्थात् एकाग्रता के समय प्राप्त स्मरण द्वारा प्राणप्रिया के समागम सुख से जैसे तैसे बिताते हैं।

स्पष्टीकरण–प्रस्तुत, पंक्तियों में **"रसोल्लासैरमी"** इन शब्दों में 'र' और 'स' की एक ही प्रकार से समानता है। केवल स्वरूप ही मिलता है क्रम नहीं। दूसरे चरण में 'क' और 'ल' की अनेक बार आवृत्ति हुई है और उसी क्रम में हुई है। सभी शब्दों में पहले 'क' आया है पीछे 'ल', इसलिए यह स्वरूप और क्रम दोनों से साम्य हुआ। प्रथम चरण में 'उन्मीलन्मधु' यहाँ एक व्यञ्जन मकार की एक ही बार और धकार की अनेक बार आवृत्ति हुई। अतः यह वृत्त्यानुप्रास का उदाहरण है।

3. श्रुत्यानुप्रास का लक्षण–

"उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थानेतालुरदादिके।
सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते॥"

तालु, कण्ठ, मूर्धा, दन्त आदि किसी एक स्थान में उच्चरित होने वाले व्यञ्जनों की (स्वरों की नहीं) समता को श्रुत्यनुप्रास कहते हैं।

उदाहरण– **"दशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दशैव याः।**
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः॥"

अर्थ–दृष्टि से जले हुए कामदेव को जो दृष्टि से ही जीवित करती है, अर्थात् भगवान भूतनाथ के भालानल से भस्म हुए कामदेव को जो अपने कटाक्ष निक्षेपमात्र से पुनः जीवित करती है। ऐसी विरूपाक्ष (विरूप नेत्रों वाले शिव) को जीतने वाली सुलोचनाओं की हम स्तुति करते हैं।

स्पष्टीकरण—यहाँ 'जीवयन्ति' 'याः' 'जयिनीः' इन पदों में जकार और यकार एक ही तालु, स्थान से उच्चरित होते हैं अतः यह श्रुत्यनुप्रास का उदाहरण है।

4. अन्त्यानुप्रास का लक्षण—

"व्यञ्जन चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्॥"

पहले स्वर के साथ ही यदि यथावस्था व्यञ्जन की आवृत्ति हो तो वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है। इसका प्रयोग पद अथवा पद आदि के अन्त में ही होता है इसलिए इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं। 'यथावस्थ' कहने से तात्पर्य है कि यहाँ यथासम्भव अनुस्वार विसर्ग स्वर आदि पूर्ववत् ही रहने चाहिए।

उदाहरण— **केशः काशस्तबकविकासः कायः प्रकटितकरभविलासः।**
चक्षुर्दग्धवराटककल्पं त्यजति न चेतः काममनल्पम्॥

अर्थ—केश, कास के फूल के समान श्वेत हो चुके और देह ऐसी हो गयी है जैसे दो पैरों से खड़े हुए ऊँट के बच्चे की होती है। आँखें जले कौड़ी के सदृश हो गईं परन्तु अब भी बढ़े हुए काम (विषम-तृष्णा) को चित्त नहीं छोड़ता है।

स्पष्टीकरण—यहाँ प्रथम द्वितीय चरणों के अन्त्य में 'विकास' और 'विलास' इन पदों में 'आस' की आवृत्ति हुई है एवं तृतीय तथ। चतुर्थ चरणों में अन्त्य में 'अल्पम्' की आवृत्ति हुई है अतः यहाँ अन्त्यानुप्रास है।

5. लाटानुप्रास का लक्षण—

"शब्दार्थयोः पौनरूक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः
लाटानुप्रास इत्युक्तो।"

तात्पर्य भिन्न होने पर शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति होने पर लाटानुप्रास होता है।

उदाहरण— **"स्मेरराजीवनयने, नयने किं निमीलिते।**
पश्य निर्जितकन्दर्प कन्दर्पवशगं प्रियम्॥"

अर्थ—हे विकसित कमल के तुल्य नेत्रवाली सखी! तूने नेत्र क्यों मूँद लिए? अपनी शोभा से काम को जीतने वाले कामातुर प्रियतम की ओर देख।

स्पष्टीकरण—यहाँ 'नयने नयने' और कन्दर्प कन्दर्प इन पदों में शब्द तथा अर्थ दोनों की आवृत्ति हुई है। शब्दों के अर्थ में भेद नहीं, परन्तु तात्पर्य विषयीभूत सम्बन्ध भिन्न है। पहला नयन पद सम्बोधनान्वयी अथवा उद्देश्यान्वयी है और दूसरा नयन पर क्रियान्वयी या विधेयान्वयी है। अतः यहाँ लाटानुप्रास है।

अनेक पदों की पुनरुक्ति का उदाहरण

"यस्य न सविधे दयिता दव दहन स्तुहिन दीधितिस्तस्य।
यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य॥"

अर्थ—जिसके समीप प्रिया नहीं, उसके लिए चन्द्रमा भी दावानल है और जिसके पास वह विद्यमान है उसके लिए दावानल भी चन्द्रमा है।

स्पष्टीकरण—यहाँ अनेक पदों का पौनरूक्त्य है। यहाँ 'पद' शब्द अर्थ का भी उपलक्षण है अतः पद और अर्थ दोनों की पुनरुक्ति जानना चाहिए। इस पद्य के पूर्वार्द्ध में 'तुहिनदीधिति' उद्देश्य और 'दवदहनत्व' विधेय है और उत्तरार्द्ध में 'दवदहन' उद्देश्य और 'तुहिनदीधितित्व' विधेय है, अतः यहाँ उद्देश्यता विधेयता रूप सम्बन्ध का भेद है। वह अनुप्रास प्रायः लाट देश के निवासियों को प्रिय होता है अतः इसे लाटानुप्रास कहते हैं।

2. यमक

यमक का लक्षण—"सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥"